ऋग्वेद-संहिता, प्रथमाष्टक के प्रथम अध्याय की छन्दोमीमाँसा

आचार्यः शिवनारायणशास्त्री

इस निबन्ध में ऋग्वेदसंहिता के प्रथम अष्टक के अष्टाक्षर गायत्री में निबद्ध १७ और अनुष्टुप छन्द में निबद्ध २ सूक्तों के कुल १९४ मन्त्रों की समीक्षा अक्षरपरिणाह की दृष्टि से की गई है। इस के अतिरिक्त वैश्वामित्र मधुच्छन्दस् के एकमात्र और सूक्त (९.१) के दस मन्त्रों की मीमांसा भी इससे उनका अध्ययन पूरा हो जाने की दृष्टि से की गई है।

वाणी का लय में बहना छन्द कहाता है।[१] वैदिक छन्द मुख्यतः सात हैं : १ गायत्री, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टुप्, ४ बृहती, ५ पङ्क्ति, ६ त्रिष्टुप् और ७ जगती।[२] इन सात छन्दोजातियों में रचित मन्त्र या श्लोक[३] की समुच्चित अक्षरसङ्ख्या अष्टाक्षर पाद से ले कर द्वादशाक्षर पादपर्यन्त २४ से प्रारम्भ करके चार-चार अक्षरों की वृद्धि से[४] क्रमशः १ गायत्री (२४ अक्षर), २ उष्णिक् (२८ अक्षर), ३ अनुष्टुप् (३२ अक्षर), ४ बृहती (३६ अक्षर), ५ पङ्क्ति (४० अक्षर), ६ त्रिष्टुप् (४४ अक्षर), और ७ जगती में निबद्ध मन्त्र या श्लोक की अक्षरसङ्ख्या ४८ होती है।

यह अक्षरपरिमाण ऋग्वेद का सामान्य मानक परिमाण है। इन्हें ऋषिच्छन्द या आर्ष छन्द कहा जाता है। इनमें एकेक अक्षर अधिक होने से उस छन्दोजाति को 'दैवी' कहा जाता है और न्यून होने से 'आसुरी' कहा जाता है। ऋग्वेदीय मन्त्र और लौकिक श्लोक प्रायः ऋषिच्छन्दों में रचित हैं।[५]

१ गायत्री और २ उष्णिक् प्रायः त्रिपदा होती हैं। १ गायत्री ८×३=२४ और २ उष्णिक् ८×२+१२=२८ अक्षर। पर वे चतुष्पदा भी मिलती हैं। १

---

१ वाग् वै सरिरं छन्दः। शतपथब्राह्मण ८.५.२.४

२ गायत्र्युणिगनुष्टुप् च, बृहती च प्रजापतेः। पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगती च, सप्तच्छन्दांसि तानि ह।। ऋ०प्रा०१६.१

३ ऋषिदृष्ट रचना मन्त्र कहलाती है और छन्दोबद्ध लौकिक रचना श्लोक।

४ चतुरुत्तरा वै वाचो रोहाः। जैमिनीय ब्राह्मण २.३.६७, अष्टाक्षरप्रभृतीनि चतुर्भ्यः परं परम्।। ऋ० प्रा० १६.२

५ दैवान्यपि च सप्तैव, सप्त चैवासुराण्यपि।। ऋ० प्रा० १६.२
एकोत्तराणि देवानां, तान्येवैकाक्षरादधि। एकावमान्यसुराणां, ततः पञ्चदशाक्षरात्।। ३
तानि त्रीणि समागम्य, सनामानि सनाम तत्। एकं भवत्यृषिच्छन्दस्, तथा गच्छति सम्पदम्।। ४
एवं त्रिप्रकृतीन्याहुर्, युक्तानि चतुरुत्तरम्। ऋषिच्छन्दांसि, तैः प्रायो, मन्त्रः श्लोकश्च वर्तते।। ५

गायत्री ६×४= २४ अक्षर और ७ ×४ = २८ अक्षर।[१]

शौनक ने गायत्री के विषय में दो बातें और आवश्यक बताई हैं : अष्टाक्षर पाद का षष्ठ अक्षर गुरु और सप्तम अक्षर लघु होना चाहिये। कात्यायन ने ६ त्रिष्टुप् (एकादशाक्षर पाद) के विषय में लघूपोत्तमता को आवश्यक नहीं माना लगता है। उन्होंने अक्षरसंख्या पर ही बल दिया है।[२]

ऋग्वेद संहिता के १.१ सूक्त की नौ ऋचाओं में से १, ३, ४, ५, ७ ऋचाएँ ८×३= २४ अक्षरों से युक्त हैं और इनका षष्ठ अक्षर गुरु, सप्तम अक्षर लघु तो है ही, पाँचवाँ अक्षर लघु है। अर्थात् ये जविपुला गायत्री में हैं।

दूसरी ऋचा का द्वितीय पाद 'रीळियो॒ नूत॑नैरु॒त', ६.२ पाद 'यद॒ङ्ग दा॒शुषे॑ तु॒व', ८.३ पाद 'वर्ध॑मान॑ सु॒वे दमे॑।।' और ९.३ पाद 'सच॑स्वा नः सु॒व॒स्तये॑।।' जात्य यण् के व्यवाय से, अष्टाक्षर भी होंगे, गुरु-लघु भी यथास्थान स्थित होंगे और २.२ पाद लघूपोत्तम भी होगा।

८.१ पाद एकाक्षरन्यूनता से निचृद् गायत्री में है और सप्तम अक्षर गुरु भी है। इस स्थिति में पादपूर्ति के लिये शौनक, कात्यायन और पिङ्गल नाग, सब ने यण् वर्णों के संयोग का सदृश स्वरवर्णों के व्यवधान (व्यवाय) से या व्यूह से (विच्छेद) का विधान किया है।[३] इस व्यवस्था में वर्णधर्म स्वरों (सम्बद्ध स्वर के अतिरिक्त आगे-पीछे के उदात्तादि) को यथायोग्य रूप में लाकर संहितापाठ के अनुकूल बनाना भी आवश्यक है। इस व्यवस्था से ८.१

---

१ गायत्री, सा चतुर्विंशत्यक्षरा।
अष्टाक्षरास् त्रयः पादाश्, चत्वारो वा षडक्षराः। ऋ०प्रा० १६.९
अष्टाविंशत्यक्षरोष्णिक्, सा पादैर्वर्तते त्रिभिः।
पूर्वावष्टाक्षरौ पादौ, तृतीयो द्वादशाक्षर।। ऋ०प्रा० १६.२०
सप्ताक्षरैश्चतुर्भिर्द्वै, 'नदं', 'मंसीमहि'ति च।। २२
द्वितीयमुष्णिक् त्रिपदा। अन्त्यो द्वादशकः। चतुःसप्तकोष्णिगेव।। ऋग्वेदानुक्रमणी ५.१,८

२ एकादशिद्वादशिनोर्लघावष्टममक्षरम्। ऋ०प्रा० ८.२१
दशमं चैतयोरेवं, षष्ठं चाष्टाक्षरेऽक्षरम्।। २२
वर्षिष्ठाणिष्ठयोरेषां, लघूपोत्तममक्षरम्। गुर्वेवेतयोर्ऋक्षु, तद् वृत्तं छन्दसां प्राहुः।। ऋ०प्रा० १७.२२

३ व्यूहेदेकाक्षरीभावान्, पादेषूनेषु सम्पदे।
क्षैप्रवर्णांश्च संयोगान्, व्यवेयात् सदृशैः स्वरैः।। ऋ०प्रा० १७.१४
व्यूहैः सम्पत् समीक्ष्योने, क्षैप्रवर्णैकभाविनाम्।। ऋ०प्रा० ८.२२

पाद का शुद्ध, पूर्ण पाठ यों होगाः 'राजन्तमध्रुवराणां'। ९.२ पाद १-२ पादों की पूर्वरूप एकादेश सन्धि के कारण एकाक्षर से न्यून, निचृद् है। इसकी पूर्ति एकादेश का व्यूह करके 'सूनवे, अग्नें, सूपायनो भव।' पाठ से होगी।। १)

दूसरे सूक्त के ४-६ मन्त्र तो पूर्वोक्त मानकों पर खरे हैं। पर १.२ पाद 'वायवायाहि दर्शत, इमे सोमा अरंङ्कृताः।', पादसन्ध्य गुणसन्धि को तोड़ कर ही निर्दोष होगा। २.२ पाद 'जरन्ते, तुवामच्छा जरितारः।' जात्य यण्संयाग के व्यवाय से और ६.३ पाद 'मक्षुवित्था धिया नरा।।' यण्सन्धि के व्यवाय से अष्टाक्षर और जविपुल तो होंगे ही, क्षैप्रस्वरित के भङ्ग के कारण कम्प का उच्चारण भी नहीं होगा। २.१, ७.३, ८.३ और ९.१ और ३ पादों की लघुगुरुव्यवस्था भी जविपुला की न होकर २.१ में रविपुला (ऽ ।ऽ), ७.३ में मविपुला (ऽऽऽ), ८.३ में यविपुला (।ऽऽ), ९.१ और ३ पादों में भविपुला (ऽ।।) गायत्री की है।। २।।

तीसरे सूक्त के १२ मन्त्रों में से सात (१, ३, ५-७, १० और १२) मन्त्र तो सुलक्षण हैं। २.३ पाद 'धिष्णिया वनंतं गिरः।।', ४.२ पाद 'सुता इमे तुंवायवः।' जात्य यण्व्यवाय से पूर्ण और जविपुल होंगे। ४.१ पाद रविपुल (ऽ।ऽ), ३ पाद सविपुल (।।ऽ), ९.१-२ पाद तविपुल (ऽऽ।), ११.१ पाद रविपुल (ऽ।ऽ) और अष्टाक्षर हैं। ११.२ पाद निचृद् गायत्री में है।। ३।।

चौथा सूक्त मधुच्छन्दस् का गायत्रीनिबद्ध दस ऋचाओं वाला चौथा सूक्त है। ३.१ पाद यविपुल निचृद् गायत्र है। इस में सप्तम अक्षर गुरु है। २ पाद भी निचृद् गायत्र है। पर व्यूह-व्यवाय की प्रक्रिया से 'विद्यामं सुमतीनाम्।' पाठ अष्टाक्षर तो हो जाता है, पर सविपुल (।।ऽ) हो जाता है। ५.१-२ पाद (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ, ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ) अक्षर-विन्यास में भी जविपुल और अष्टाक्षर होने से 'गायत्री' के लक्षण पर खरे उतरते हैं। ८.२ पाद भविपुल (ऽ।।) गायत्र है। १०.१ पाद 'यो रायो अवनिर्महान्' पाठ से, पूर्वरूप सन्धि के व्यूह से, सुलक्षण गायत्र सम्पन्न होता है।। ४।।

पाँचवें सूक्त की दस ऋचाओं की रचना विश्वामित्र कौशिक के पुत्र मधुच्छन्दस् ने गायत्री में की है। १.१-२ पाद 'आ तुवेता नि षीदत, इन्द्रमभि

प्र गा॑यत।', व्यवेत और व्यूढ पाठ से सुलक्षण अष्टाक्षर बनेगा। २.१ पाद निचृद् गायत्र है। २ पाद षडक्षर है। पर 'ईशा॑नं वारि॑याणाम्।' पाठ से जात्य यण् के व्यवाय से निचृद बनता है। ३.२ पाद की पूर्ति 'स रा॒ये स पुरं॑न्धियाम्' पाठ से, ५.३ पाद 'सोमा॑सो॒ दधि॑याशिरः।', यण्सन्धि के व्यवाय से, ६.१ पाद 'तुवं सुतस्य॑ पी॒तये॑,' पाठ से सुलक्षण गायत्र बनेगा। ७.२ पाद 'आ त्वा॑ विशन्तुवा॒शव॒:,' यणसन्धि के व्यवाय से पूर्ण और जविपुला गायत्री में सम्पन्न होगा। अष्टम मन्त्र के तीनों पाद सप्ताक्षर, निचृद् हैं और इससे यह मन्त्र यथापाठ में पादनिचृद् गायत्री में है। पर, कात्यायन ने इस का उल्लेख नहीं किया है। अपितु 'आदौ गायत्रं प्राग्घैरण्यस्तूपीयात्' (ऋ०१.३१)–ऋ०अ० १२.१४ परिभाषा से यह गायत्री में है। यह स्थिति तीनों पादों में 'तुवां' व्यवाय से 'तुवां स्तोमा॑ अवीवृधन्, तुवामु॒क्था श॑तक्रतो। तुवां व॑र्धन्तु नो॒ गिर॑:।।' पाठ से ही सम्भव है। ९.१ पाद भी 'यस्मि॒न् विश्वा॑नि॒ पौंसि॑या।।', जात्य यण् के व्यवाय से अष्टाक्षर और लघूपोत्तम होगा।

इन व्यवायों के अतिरिक्त इस सूक्त के शेष सभी मन्त्र सर्वाङ्गसम्पन्न अष्टाक्षर हैं।। ५।।

छठे सूक्त की दस ऋचाओं में से १.१ पाद अष्टाक्षर किन्तु नविपुल है। २.१ षडक्षर पाद 'युञ्जन्ति॑यस्य॒ कामि॑या॒', सन्ध्य और जात्य यण् के व्यवाय से तथा ८.२ पाद 'ग॒णैरिन्द्र॑स्य॒ कामि॑यै:।।', जात्य यण् के व्यवाय से पूर्ण और सुलक्षण जविपुला गायत्री में सम्पन्न होंगे। १.३ पाद भविपुल अष्टाक्षर है। सूक्त के शेष २६ पाद जविपुला गायत्री में पूर्णक्षर हैं।। ६।।

सातवें सूक्त की दस ऋचाओं में से २.१ पाद 'इन्द्र॒ इद्धरि॑यो॒: सचा॒', यण्व्यवाय से न केवल पूर्ण और जविपुल होता है, अपितु ऽ।ऽ।, ।ऽ ।ऽ व्यवस्थित लय में सम्पन्न होता है। ३.३ पाद भी ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ विशेष लय से संपन्न है। ४.१ पाद 'इन्द्र॒, वाजे॑षु नो अव', व्यवाय से जविपुल और अष्टाक्षर है। ८.२ पाद 'कृ॒ष्टीरि॑यर्ति॒योजसा।' यण्व्यवाय से श्रेष्ठ गायत्र बनता है। ९ मन्त्र के तीनों पादों में एकेक अक्षर कम हैं। अतः यह मन्त्र पादनिचृद् गायत्री में है। १ पाद का ५वाँ अक्षर लघु है और छठा गुरु। २ पाद में अन्तिम त्रिक भगण (ऽ।।) है। १०.२ पाद 'हवा॑महे॒ जने॑भि॒य:।' जात्य यण् के व्यवाय से

सुलक्षण, जविपुल पूर्ण और ।ऽ ।ऽ ।ऽ ।ऽ अक्षरव्यवस्था से सुन्दर लय से सम्पन्न हो जाता है। शेष सब पाद सुलक्षण जविपुला गायत्री में हैं।। ७।।

आठवें सूक्त में दस ऋचाएँ हैं। १.१ पाद की पूर्ति और सुलक्षणता 'आ इंन्द्र, सानसिं रयिं', गुणसन्धि के व्यूह से होगी। २.३ षडक्षर पाद 'तुवोतांसो नियर्वता', जात्य और सन्ध्य यण् के व्यवायों से सुलक्षण गायत्र बनेगा। ६.२ पाद नविपुल अष्टाक्षर है। ८.१ पाद 'एवा हियंस्य सूनृतां,' क्षैप्र सन्ध्य यण् के व्यवाय से, १०.१ पाद 'एवा हियंस्य कामिंया', एक क्षैप्र सन्ध्य और एक जात्य यण् के संयोग के व्यवाय से और दूसरा पाद 'स्तोमं उक्थं च शंसिंया।' एक जात्य यण् के व्यवाय से सुलक्षण होंगे।

९.१.१ पाद 'इन्द्रेहि मत्सियन्धंसो', ३.३ पाद 'सचैषु सवंनेषुवा', ५.२ पाद 'राधं इन्द्र वरेंणियम्।', ६.२ पाद 'अस्मान्त्सु तत्रं चोदय, इन्द्रं रायेरभंस्वतः।' पाद गुणव्यूढ और ९.३ पाद 'विश्वायुंर्धेहियक्षिंतम्।।' व्यवेत पाठ से सुलक्षण गायत्र बनेंगे। अर्थाद् ये सब पाद संहितापाठ में अनार्ष सन्धियों से विकृत हुए हैं और इन के व्यवाय अथवा व्यूह से संहिता निर्दोष और आर्ष लय में आएगी।

९.९.१ पाद अष्टाक्षर तो है। पर नविपुलता के कारण लय एकदम बदल गई है। मेधातिथि को लय की दृष्टि से लघु–गुरु–लघु–गुरु अक्षरविन्यास बहुत पसन्द है। यह इन सूक्तों के गणक्रम से विदित होता है।

१०.१ पाद 'सुतेसुंते नियोंकसे', सन्ध्ययण्व्यवाय से पूर्ण और जविपुल होता है।

नवम सूक्त के अन्य सभी पाद जविपुल, पूर्णाक्षर और लघु–गुरु–लघु की नृत्यत्पदा जविपुल शैली में सुन्दर लय से प्रस्तुत किये गए हैं।। ९।।

प्रथम मण्डल के आरम्भ में इन नौ सूक्तों के अतिरिक्त कौशिक विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र मधुच्छन्दस् का गायत्री छन्द में और इसी नृत्यत्पदा शैली में निबद्ध एक सूक्त और है : नवम मण्डल के दस ऋचाओं वाले प्रथम सूक्त की रचना भी मधुच्छन्दस् ने ही की है। इस का छान्दस विवरण इस प्रकार है :

नवम मण्डल के प्रथम सूक्त का ३.३ पाद यथापाठ मेँ निचृद् गायत्र और यविपुल है। इसका पञ्चम अक्षर लघु, छठा गुरु और सातवाँ गुरु है। ४.१ पाद 'अभिर्यर्ष महानां', सन्ध्य यण् का व्यवाय करके भी यविपुल निचृद् गायत्र रहता है। पञ्चम अक्षर लघु, छठा गुरु और सातवाँ भी गुरु है। ५.१ पाद 'तुवामच्छा चरामसि', ३ पाद 'इन्द्रो, तुवे न आशसः।।', ७.३ पाद 'स्वसारः पारिये दिवि।।', ८.१ पाद 'तमी हिनुवन्त्यग्रुवो', अथवा 'तमी हिन्वन्तियग्रुवो', ९.१ पाद 'अभी३ममघ्निया उत', १०.१ पाद 'अस्येन्दिन्द्रो-मदेषुवा', व्यवेत पाठ से जविपुलअष्टाक्षरसम्पन्न होते हैँ। शेष सभी २२ पाद इसी प्रसन्न और नृत्यत्पदा लघु-गुरु क्रम की शैली मेँ स्वाभाविकता को लिये हुए जगणविपुला ८×३=२४ अक्षर वाली गायत्री जाति मेँ निबद्ध हैँ।।९.१.२।।

प्रथम मण्डल मेँ मधुच्छन्दस का १२ ऋचाओँ वाला एक, दसवाँ सूक्त अनुष्टुप् (८×४=३२ अक्षरोँ) मेँ भी है। इस दसवेँ सूक्त का १.२ पाद प्रथम पाद से पूर्वरूप सन्धि के व्यूह से और यण्सन्धि के व्यवाय से 'गायत्रिणो, अर्चन्तियर्कमर्किणः।' पाठ से और २.२ पाद 'भूरियस्पष्ट कर्तुवम्।', क्षैप्र और जात्य यण्संयोगोँ के व्यूह और व्यवाय से अष्टाक्षर बनेगा। ३.२ पाद 'कक्षियप्रा' पाठ से निर्दोष होगा। ४.२ पाद प्रथम पाद से दीर्घ सन्धि के व्यूह और यणसन्धि के व्यवाय से 'स्वर, अभि गृणीहिया रुव।' एवं ४ पाद 'सचा, इन्द्र', पादसन्ध्य पूर्वरूप के व्यवाय से निर्दोष होँगे। ५ मन्त्र को १ पाद 'शंसियं' तथा ४ पाद 'सखियेषु' पाठ से और ६.२ पाद 'सुवीरिये' पाठ से। ८.३ पाद 'सुवर्तनी' पाठ से जात्य यण्संयोग के व्यवाय से पूर्ण होँगे।।१०।।

ऋग्वेदसंहिता के दूसरे ऋषि जेतृ माधुच्छन्दस् का अनुष्टुप् मेँ निबद्ध आठ ही ऋचाओँ वाला एक ही सूक्त है। प्रथम अध्याय मेँ इस ग्यारहवेँ सूक्त का १.३ पाद स्पष्टतः निचृत् है। २.३ पाद 'तुवामभि', जात्य यण्संयोग के व्यवाय से और ३.२ पाद 'दस्यन्तियूतयः', यण्सन्धि के व्यवाय से, ५.१ पाद 'तुवं' पाठ से, ३ पाद 'तुवां' और ७.२ पाद 'तुवं' पाठ से जात्य यण् के व्यवायोँ से, पूर्ण होँगे। ७.३ पाद 'मोजसा, अभि' पादसन्ध्य दीर्घ के छेद से पूर्ण होगा।।११।।

इस अध्ययन के निष्कर्ष के रूप मेँ हम कह सकते हैँ कि –

(१) गायत्री में अष्टाक्षर तीन पाद आवश्यक हैं।

(२) मधुच्छन्दस् ने गायत्री और अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध मन्त्रों में अष्टाक्षर पादों की ही रचना की थी। किन्तु कालप्रवाह में उच्चारण में त्वरा दोष के प्रभाव से कुछ शब्दों में स्वर+स्वर अपना स्वाभाविक पृथग् रूप नहीं रख पाए। विशेषकर मात्रिक इ-उ वर्णों को बोलने की ज़ल्दी में, क्षिप्रता में, अर्धमात्रिक स्वस्थानिक अर्धस्वर य्-व् के रूप में सन्धिज संयोग शब्द का जात्य, स्वाभाविक, अङ्ग समझा जाने लगा। पदान्तीय और पदादिस्थ इ - उ + स्वर के उच्चारण में भी इसी क्षिप्रता के कारण क्षैप्र वर्णों, य्, व् का प्रयोग भाषिक प्रवाह में, व्यवहार में, आ गया। कालान्तर में यह स्थिति अन्य सवर्ण और असवर्ण स्वरों के युगपत् प्रयोग में दीर्घ, गुण, वृद्धि, पूर्वरूप और पररूप एकादेश सन्धिज वर्णों के रूप में व्यवहार में पूर्वापेक्षया अधिक प्रयुक्त होने लगी।

सङ्क्रमण के काल में तो ऋग्वेदसंहिता इस नए उच्चारण से, भाषिक परिवर्तन से मुक्त रही। कालान्तर में श्रुतिपरम्परा में नूतन उच्चारण संहिता के कलेवर में छन्द की कीमत पर भी प्रविष्ट हो गए। जात्य यण्संयोग वाले पद तो जहाँ जितनी बार प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ उतनी बार चाहे जो छन्द रहा हो, वह उतने अक्षरों से प्रायेण भग्न हुआ है। अन्य सन्धिज क्षैप्र या एकादेश भी जहाँ कहीं, जितनी मात्रा में मन्त्रशरीर में प्रविष्ट हुए हैं, वहाँ उतनी ही बार, उतने ही अक्षरों से वेदगिरा के पादभङ्ग हुए हैं। अनुक्रमणियों में संक्रमणकाल की स्थिति का उल्लेख किया प्रतीत होता है। अनुक्रमणियों में कुछ मन्त्रों के छन्द का विवरण तो सँहिता के मूल आर्ष पाठ का ही विवरण प्रस्तुत करता है। आज उपलब्ध पाठ उस पर खरा नहीं उतरता। कुछ मन्त्रों का छान्दस विवरण उपलब्ध सन्धियुक्त पाठ को पुष्ट करता है। और तो और, पाणिनि द्वारा पादपूर्त्यर्थ विहित 'सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्' (अष्टाध्यायी) व्यवस्था भी अपनाई मिलती है, और फिर भी पाद अपूर्ण ही है, जो व्यूह से पाणिनि के पादपूर्ति की स्थिति में आता है। अस्तु।

मधुच्छन्दस् के छान्दस काव्य में जात्य संयोग के कारण छन्दोभङ्ग

अधिक, चार पादों में और एकादेश सन्धि के कारण १ पाद में, वह भी दो पादों के मध्य हुआ है। परवर्ती छन्दःशास्त्र में अन्तःपादीय सन्धि की अनिवार्यता स्वीकृत होने के बाद सम्भवतः यह पादसन्ध्य घुचपिच हुई है।

(३) मधुच्छन्दस् के अष्टाक्षर पाद में पञ्चम वर्ण लघु, षष्ठ वर्ण गुरु और सप्तम वर्ण लघु है। अर्थाद् गणव्यवस्था की दृष्टि से इनकी गायत्री, इस सूक्त में, जविपुला (। ऽ ।) है।।

ऋग्वेदसंहिता के तीसरे ऋषि मेधातिथ काण्व के प्रथम मण्डल में ग्यारह (१३–२३) सूक्त गायत्री में निबद्ध हैं। उनके तीन और (८.२, ३२ और ९.२) सूक्त भी गायत्री छन्द में हैं। १.१२ गायत्र सूक्त के ३६ पादों में से ३० पाद तो जविपुला अष्टाक्षर गायत्री में निबद्ध हैं। एक (९.३) पाद 'तस्मै पावक, मृळय।।' नविपुल और अष्टाक्षर है। ३.३, ४.२, ५.३ पाद जात्य यण्संयोग के कारण निचृद् हो गए हैं और ६.३ पाद एक सन्ध्य यण्संयोग और एक जात्य यण्संयोग के कारण विराड् (द्व्यक्षरन्यून) हो गया है। इनकी पूर्ति तथा सुलक्षणता निम्न इ, उ से व्यवेत पाठ से होगी :

(१) असि॒ होता॑ न॒ ईळि॑यः।। १.१२.३.३

(२) यद॑ग्ने॒, यासि॑ दू॒तिय॑म्। ४.२

(३) अग्ने॑, तु॒वं र॑क्ष॒स्विन॑ः।। ५.३।। १२।।

१.१३ सूक्त की १२ गायत्रीनिबद्ध ऋचाओं के ३६में से ३२ पादों के ५–७ अक्षरों का विन्यास जगण (।ऽ।) का है और सब अष्टाक्षर हैं। दो (८.२ और ११.२) पाद इतिहास में कभी व्यवेत रहे होंगे, पर बाद में जात्य मान लिये गए यण्संयोगों के कारण एकाक्षरन्यून हो गए हैं। उनकी पूर्ति तथा स्वरूपापत्ति १. 'होता॑रा॒ दैवि॑या क॒वी।' (८.२), २. 'देव॑, दे॒वेभि॑यो ह॒विः।' (११.२), पाठ से होगी। ९.३ पाद बाद में महामति वेदपाठियों द्वारा अपने समय के उच्चारण के अभ्यास के अनुसार 'सी॑दन्तु अ॒स्रिध॑ः' को 'सी॑दन्त्व॒स्रिध॑ः' में बदलने के कारण न अष्टाक्षर रहा, न जविपुल। इसे 'ब॒र्हिः सी॑दन्तुव॒स्रिध॑ः।।' करने से पाद सुलक्षण (जविपुल), पूर्ण और आर्ष हो जाएगा।। १३।।

१४वें सूक्त की १२ ऋचाओं के ३६ पादों में से ३० पाद सुव्यवस्थित

लघु-गुरुक्रमयुक्त, पूर्णाक्षर, जविपुला गायत्री में हैं। दो, ८.१ और ११.१, पाद जात्य यण्संयोग के कारण खण्डित, निचृद हो गए हैं। दो ७.२ और ११.२ पाद पादसन्ध्य पूर्वरूप के कारण निचृद्, एक १०.१ पाद जात्य और सन्ध्य यण्संयोगों के कारण विराड् गायत्र, एक १२.१ पाद यण्सन्धि के कारण निचृद् हो गया है। ये सब निम्न प्रकार से व्यूह और व्यवाय कर के आर्ष रूप में आएँगे :

१. तान् यजंत्राँ ऋतावृधो, अग्ने पत्नीवतस्कृधि।। (१४.७.१-२)।
२. ये यजंत्रा य ईळियास् (८.१)।
३. विश्वेभिः सोमियं मधुवग्न इन्द्रेण वायुना। (१०.१)
४-५. तुवं होता मनुर्हितो, अग्ने, यज्ञेषु सीदसि। (११.१-२)
६. युक्ष्वा हियरुषी रथे (१२.१)।। १४।।

१५वें सूक्त में १.१, २.१, ३.२, ४.३ (कुल चार) पाद भुरिग् गायत्र तथा नविपुल हैं। १.२ पाद 'ऋतुना, ऽऽ तुवा (अथवा 'ऋतुना, आ त्वा') पाठ से विशन्तुविन्दवः।' ३.३ पाद 'तुवं हि रत्नधा असि'।। पाठ से सुलक्षण गायत्र बनते हैं। १०.१ पाद नविपुल है। ११.२ पाद निचृद् है। पर 'दीदियग्नी शुचिव्रता।' पाठ से, सन्ध्य यण् के व्यवाय से यह पूर्णतः सुलक्षण हो जाता है। १२.१ पाद भी 'सन्तिय',[१] जात्य यण् के व्यवाय से पूर्ण और सुलक्षण होगा।

शेष पाद सुलक्षण जविपुल गायत्री में हैं।। १५।।

१६.३.२ पाद 'इन्द्र प्रयतियध्वरे' पाठ से सुलक्षण होगा। ५.१ 'सेमं नः सोममा गह्युपेदं' पाद एकाक्षरन्यून होने से निचृद् भी है और पादपूर्ति के लिये 'सः इमं सेमं' सन्धि भी पाणिनि के 'सोऽचि लोपे चेत् पाद पूरणम्' (अष्टाध्यायी) नियम के अनुसार कर रखी है। इससे सिद्ध होता है कि यदि यह सन्धि न की जाती, तो यह पाद नवाक्षर होता। उस के लिये ऋषि ने 'स इमं' की बजाय 'सेमं' संहिता की है।[१] यह स्थिति आती है 'सेमं नः सोममा गहि, उपेदं', पादसन्ध्य यण् के व्यूह या व्यवाय से। इस से पाद सुलक्षण गायत्र हो

१ १२.१-२ पादों में ऋषि ने ही गुणसन्धि नहीं की है। यह 'ऋत्यकः' (अष्टाध्यायी) से भी विवृत्ति का विषय रहा हो सकता है।

जाता है। अतः यह यण्सन्धि अनार्ष है। १६.९.३ पाद 'स्तवा॑म त्वा सुवा॒धिय॑ः'।। पाठ से सुलक्षण और आर्ष बनेगा। शेष सभी पाद सुलक्षण गायत्र हैँ।। १६।।

१७.२.१ पाद यथापाठ मेँ निचृद् गायत्र और जविपुल है। इस से यह अन्य पादोँ के समान लय से युक्त भी हो जाता है। अतः 'गन्ता॑रा॒ हि स्थो अव॑से', पाठ मेँ यह पाद भविपुल है। ३ पाद निचृद् और जविपुल है। इस प्रकार यह ऋचा ७+८+७=२२ अक्षरविन्यास से विराड् गायत्री मेँ है। ३.१ पाद रविपुला गायत्री मेँ है। ४ ऋचा ७×३=२१ अक्षरोँ के कारण पादनिचृद् है और तीनोँ पादोँ मेँ अन्तिम (५–७ अक्षरोँ का) त्रिक यगण (।ऽऽ) का है। ५वीँ ऋचा के यथापाठ मेँ ७+६+६=१९ अक्षर हैँ। किन्तु ५.१ पाद 'दाव॑नां' पाठ से अष्टाक्षर और जविपुल होगा। ८.२ पाद मेँ 'वरु॑ण॒ः शंसि॑यानाम् पाठ से सप्ताक्षर, निचृद् होगा। ५.३ पाद क्रतु॑र्भवतियु॒क्थिय॑ः।।' सन्ध्य और जात्य यण्संयोग के व्यवेत पाठ से जविपुल और अष्टाक्षर बनेगा। ६.३ पाद का पाठ 'सि॒यादुत प्र॒रेच॑नम्।।' जात्य व्यवाय से सुलक्षण है। ८.२ पाद 'सिषा॑सन्तीषु धी॒षुवा।' यण्सन्धि के व्यवेत पाठ से आर्ष बनेगा।। १७।।

प्रथम अष्टक के प्रथम अध्याय मेँ १८वेँ और मेधातिथि काण्व के सातवेँ सूक्त मेँ नौ मन्त्र हैँ। इन मेँ से प्रथम गायत्र मन्त्र के प्रथम पाद मेँ छह अक्षर हैँ। इस से यह मन्त्र और पाद विराड् गायत्र है। किन्तु 'स्वर॑णं' पद की यण्सन्धि के व्यवाय अथवा व्यूह से, 'सु॒वर॑णं' पाठ से यह नविपुला गायत्री मेँ निचृद् रह जाता है : सो॒मा॑नं सु॒वर॑णं (ऋ० १.१८.१.१)। शेष दो पाद जविपुला गायत्री मेँ हैँ। पूरा मन्त्र लघूपोत्तम है। दूसरे मन्त्र के तीनोँ पाद जविपुल एवं लघूपोत्तम हैँ। पूरे सूक्त मेँ केवल १ (३.२) पाद रविपुल होने से गुरूपोत्तम है। ३.३ पाद नविपुल एवं लघूपोत्तम है। किन्तु द्वितीय पाद यथालब्ध पाठ मेँ तविपुल एवं गुरुपोत्तम एवम् सप्ताक्षर होने से निचृद् है। इस प्रकार दो कारणोँ से लक्षणविहीन है। निचृद् दोष का निवारण रविपुल 'मर्ति॑यस्य' पाठ से होगा और पाद का पाठ होगा 'धू॒र्तिः प्र ण॒ङ् मर्ति॑यस्य'।

चतुर्थ मन्त्र के प्रथम दो पाद जविपुल होने से लघूपध हैँ। किन्तु तृतीय पाद यथालब्ध पाठ मेँ यविपुल, गुरूपोत्तम एवं निचृद् है। इन दोनोँ दोषोँ का

१ द्रष्टव्य १.९.१ : सेमं न॒ः काम॒मा पृ॑ण।

निवारण जात्य यण्संयोग के व्यूह से ही होगा : सोमो हि॒नोति॒ मर्तियम्।।

पञ्चम मन्त्र पूरा ७+७+७=२१ अक्षरों से युक्त होने से पादनिचृत् है। इन में भी केवल १ और ३ पाद ही लघूपोत्तम हैं। यह मन्त्र

तु॒वं तं ब्र॑ह्मणस्पते॒, सोम॒ इन्द्र॑श्च मर्तियम्। दक्षि॑णा पातु॒वंह॑सः।।

पाठ से, दो जात्य और एक क्षैप्र (यण्सन्धि) के व्यवाय से, निर्दोष, ऋषि का प्रिय जविपुल एवं लघूपोत्तम होगा।

छठे मन्त्र के दो, प्रथम और तृतीय पाद तो जविपुल एवं लघूपोत्तम हैं। किन्तु द्वितीय पाद यविपुल होने से, गुरूपोत्तम एवम् एकाक्षरन्यूनता, दो दोषों से युक्त है। इनका समाधान एक जात्य यण् के व्यवास से ही हो जायेगा : प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ कामि॑यम्।

सप्तम मन्त्र के तीनों एवम् अष्टम के प्रथम और तृतीय पाद जविपुल, लघूपोत्तम एवं पूर्णाक्षर हैं। किन्तु ८.२ पाद क्षैप्र यण्सन्धि के व्यवाय से ही एकाक्षरन्यूनता दोष से मुक्त होगा : प्राञ्चं कृणोतियध्व॒रम्।

सूक्त के अन्तिम, नवम, मन्त्र के प्रथम दो पाद तो जविपुल, लघूपोत्तम एवं पूर्णाक्षर हैं। किन्तु तृतीय पाद को नविपुल कर के ऋषि ने छन्द का प्रवाह अन्त में थोड़ा बदल दिया है। लय बदल दी है।। १८।।

ऋग्वेदसंहिता के प्रथम अध्याय के अन्तिम और मेधातिथि काण्व ऋषि के अष्टम, नौ ऋचाओं वाले १९वें सूक्त में ९× ३= २७ पादों के बजाय केवल १९ पाद नूतन हैं। सभी मन्त्रों का अन्तिम पाद एक ही है : म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि।।

इन ९×२=१८+१=१९ पादों में से १७ पाद तो जविपुल, लघूपध एवं पूर्णाक्षर सुलक्षण गायत्र हैं। किन्तु दो, २.१ और ९.२ पाद जात्य यण्संयोग वाले 'मर्त्य' और 'सोम्यं' शब्दों के कारण एकाक्षरन्यूनता दोष से खण्डित हो गए हैं। अन्यत्र के समान इन में जात्य यण्संयोग के व्यवाय से निर्दोष आर्ष स्वरूप में आएँगे :

न॒हि दे॒वो न मर्तियो (ऋ० १.१९.२.१)
सृ॒जामि॑ सोमि॒यं मधु॑। (ऋ० १.१९.९.२)।। १९।।

निष्कर्ष : ऋग्वेदसंहिता में छन्द का मुख्य निर्धारक तत्त्व

अक्षरपरिमाण[१], अक्षरों की संख्या है : यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः। इन में सन्धि की विवशता के विना, स्वाभाविक रूप से, एक या दो अक्षरों की न्यूनता होने पर प्रकरण आदि के आधार पर छन्द का निर्धारण किया जाता है।[२] वर्णान्तरभाव करने वाली यण्, दीर्घ, गुण, वृद्धि, पूर्वरूप और पररूप से होने वाली अक्षरन्यूनता छन्दोभङ्गकारक मानी जाती है और उसकी पूर्ति सन्धि को तोड़ कर अथवा ऐसे न्यूनाक्षरत्वकारक जात्य अथवा सन्ध्य क्षैप्र यण्संयोगों में यण् वर्ण के पूर्व उस यण् के सस्थानिक इ, उ और अ स्वर को जोड़ना, अर्थाद् यण् सन्धि के पूर्व प्रचलन में आई इयङ्, उवङ् सन्धि का समावेश करके, अक्षरसंख्या की पूर्ति आवश्यक होती है।[३] उदात्तादि स्वरों की व्यवस्था भी उसी प्रकार से करके मन्त्र की भाषा और छन्द शुद्ध करने आवश्यक हैं।

छन्दों के ब्राह्मणग्रन्थों में उपलब्ध लक्षण में अमुक निश्चित अक्षर-संख्या के अन्तर्गत लघु-गुरु का विचार उपलब्ध नहीं है। अर्थाद् गणव्यवस्था की कल्पता प्राचीन वैदिक छन्दःशास्त्र में उपलब्ध नहीं है। तथापि ऋचाओं के ऋषियों की दृष्टि में यह व्यवस्था छन्द में महत्त्वपूर्ण थी। सम, विषम, द्विपदा, त्रिपदा, चतुष्पदा और षट्पदा ऋचाओं का उल्लेख परवर्ती, याजुष संहिता साहित्य में ही उपलब्ध होता है।[४]

प्रस्तुत प्रथम अध्याय के १९४ मन्त्रों की रचना अष्टाक्षर त्रिपदा गायत्री और चतुष्पदा अनुष्टुब् जाति में उपलब्ध होती है। इन मन्त्रों के आठ अक्षर वाले पाद में गण-व्यवस्था के अनुसार ये ऋचाएँ आठ प्रकार की उपलब्ध हैं। इस व्यवस्था में आठ अक्षरों के पाद में पञ्चम, षष्ठ और सप्तम अक्षर की लय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इन अक्षरों की लघुता और गुरुता छन्द की लय बदल देने के कारण महत्त्वपूर्ण होती है। परवर्ती छन्दःशास्त्रियों

---

१. अक्षराण्येव सर्वत्र निमित्तं बलवत्तरम्।
बिद्याद् विप्रतिपन्नानां, पादवृत्ताक्षरैर्ऋचाम्।। ऋ०प्रा० १७.१३

२. प्रायोऽर्थो वृत्तमित्येते, पादज्ञानस्य हेतवः।
विशेषसन्निपाते तु, पूर्वं पूर्वं परं परम्।। १७.१६

३. व्यूहैः सम्पत् समीक्ष्योने, क्षैप्रवर्णैकभाविनाम्।। ऋ० प्रा० ८.४०

४. द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु तुवा।। वा०सं०२३.३४

ने इन्हें १ यविपुल, २ मविपुल, ३ तविपुल, ४ रविपुल, ५ जविपुल, ६ भविपुल, ७ नविपुल, और सविपुल इन आठ भेदों में बाँटा है। अष्टम अक्षर विवृतता की अधिकता से लघु होते हुए भी दीर्घ के रूप में उच्चारित होता है। अतः उपोत्तम वर्ण को अधिक महत्त्व दिया जाता है। बाद के साहित्य में त्रिपदा छन्दो-जाति तो उपलब्ध नहीं होती। चतुष्पदा अनुष्टुप् छन्दोजाति के सर्वाधिक प्रचलित 'श्लोक' में ५-६-७वें अक्षरों की व्यवस्था विषम (१, ३) पादों में यगण (।ऽऽ) और सम (२, ४) पादों में जगण (।ऽ।) के प्रयोग की मान्य की गई है।[१]

प्रकृत प्रथम अध्याय के १९ सूक्तों में मधुच्छन्दस् के और नवम मण्डल में उपलब्ध अष्टाक्षर पादों की व्यवस्था गायत्री में निबद्ध १७४+९.१-१०=१८४ और अनुष्टुप् में निबद्ध २० कुल २०४ मन्त्रों में इस प्रकार है :

१. यविपुला गायत्री **१**.८.१।**२**.८।**४**.३.१-२।**५**.२.२। **६**.१०.३।**१५**.६.३। **१७**.४-५.२। **९.१**.३.३ नि० ।४.१ नि०। अनुष्टुप् **१०**.३.२। **११**.१.३।

२. मविपुला गायत्री **२**.७.३।

३. तविपुला गायत्री **३**.८.१। **६**.९.१। **१०**.२.३। **१२**.५.३। **१९**.३.२। अनुष्टुप् **१०**.२.३।

४. रविपुला गायत्री **२**.२.१। **७**.१। **३**.४.१, ३। ६.१। ११.१। **९**.५.१। **१७**.२.१। **१८**.३.२। अनुष्टुप् **१०**.२.२।

५. जविपुला गायत्री **१**.१। २.२-३। ३-७। ८.२-३। ९। **२**.१। २.३। ३- ७। ८.२। ९.२। **३**.१-३। ४.२। ५। ६.३। ७। ८.२। ९.३। ४-१०। ११.२-१२। **४**.१-२। ३.३। ४-८.१,३। ९-१०। **५**.१। २.१। ३-१०। **६**.१.२, ३। २-३। ४.२-३। ५-१०.२। **७**.१-१०। **८**.१-१०। **९**.१-४। ५.२-३। ३-८। ९.२-३। १०। **१२**.१-५.२। ६-९.२। १०-१२। **१३**.१-१२। **१४**.१-१२। **१५**.१-२,३। २.२-३.१। ३.३-४.२। ५-६.२। ७.२-९। १०.२-१२। **१६**.१.२-९। **१७**.२.२,३। ३। ५.३। ६-९। **१८**.१.२.३। ३.३। ४-९.२। **१९**.१-३.१। ३.३-९। **९.१**.१-३.२। ४.२.२-६.१, ३। अनुष्टुप्

---

१. श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

१०.१। २.१,४। ३–६.३। ७.२–८.३। ९–१२। **११**.१। १–२, ४। २–८।

६. भविपुला गायत्री **२**.८.१।९.१, ३।**४**.८.२।**६**.४.१।१०.३।**१५**.१.१। २.१। ३.२। ४.३। ७.१। १०.१। **१६**.१.१। **१७**.२.१। अनुष्टुप् **१०**.८.४।

७. नविपुला गायत्री **१**.२.१।**३**.६.२।**६**.१।**९**.९.१।**१२**.९.३।**१५**.१.१ भुरिक्। २.१ भुरिक्। ३.२ भुरिक्। ४.३ भुरिक्। ७.१। १०.१। १६.१.१। **१८**.९.३। **९.१**.६.२ अनुष्टुप् **१०**.७.१।

८. सविपुला गायत्री **१**.२.२। ८.१। **२**.२। **१५**.१०.१। **१८**.१.१,३। अनुष्टुप् **१०**.६.४।।[१]

इस सारणी से स्पष्ट है कि गायत्री के ५२२ पादों में कहीं अधिक बड़ी संख्या जविपुल पादों की है और उसके बाद बहुत कम, पर द्वितीय, बड़ी संख्या यविपुल ऋक्पादों की है। अनुष्टुप् में भी यही स्थिति है। इन जविपुल और यविपुल प्रयोगों में सम विषम पादों का कोई भेद उपलब्ध नहीं होता। शौनक ने इसीलिये अष्टाक्षर पादों में जविपुल जाति की अधिकता के कारण लघूपोत्तमता को और छठे अक्षर की गुरुता को अष्टाक्षर पादों का विशेष लक्षण बताया है।[२]

इस विवरण का निष्कर्ष यह है कि इन १९४+१०=२०४ अष्टाक्षर मन्त्रों के ६३४ पादों में इन आठ प्रकार की अक्षरव्यवस्थाओं के आधार पर प्रथमतः ये आठ भेद उपलब्ध होते हैं। पर यह स्थिति पादव्यवस्था की है। ऋचा के छन्द की नहीं। ऋचा का छन्द तो अक्षरों की गिनती के आधार पर बने पादों की संख्या के आधार पर गायत्री और अनुष्टुप् आदि नामों से ही समझा जाएगा। उसमें अक्षरन्यूनता छन्दस्त्व का विघातक महादोष है। इसे हटा कर ही ऋग्वेद के स्वरूप को व्यवस्थित करना चाहिये।

सामवेद तो पूरी तरह ऋचा पर आश्रित है। इसके गान तो इस दोष के रहते शुद्ध स्वरूप में रह ही नहीं सकते। ऋग्वेद के आठ विकृतिपाठों में पदपाठ को छोड़ कर शेष विकृतिपाठ भी इस दोष के रहते सही रह सकते हैं, यह मेरी

---

१. यह विवरण बनाने में पूरी सावधानी बरतने की चेष्टा की गई है। फिर भी त्रुटियाँ सुधीजन क्षमा करें और सुधार लें।

२. षष्ठं चाष्टाक्षरेऽक्षरम्। ऋक्०प्र० ८.३९। वर्षिष्ठाणिष्ठयोरेषां, लघूपोत्तममम्क्षरम्। १७.२२

तो अल्पमति से बाहर की बात है। छन्दःशास्त्र की उपेक्षा करने वाले वेदमूर्ति आचार्य इस विषय में गहराई से विचार करें।

कर्मकाण्ड में भी मन्त्रों के विनियोग में केवल छन्द का नाम लेना पर्याप्त नहीं है। उस की यथार्थ स्थिति देखना भी आवश्यक है। 'अविदित्वाऽऽर्षेयच्छन्दः' वाक्य में विचार, ज्ञान, लाभ, अस्तित्व अर्थ वाली 'विद्' धातु का प्रयोग किया गया है। उच्चारणार्थक क्रियापद का नहीं।

इति निवेद्य विरमति बुधजनचरणसरोरुहचञ्चरीको भ्रमरस्त्रिप्रवरः

शिवनारायणो भारद्वाजः।

२५-१०-२०१७ बुधवार
२१४९-५०, सैक्टर-१३, हुडा
भिवानी (हरि०) १२७०२१
दूरभाष : ९४१६९७७३९९

इस विवेचन के फलस्वरूप ऋग्वेदसंहिता के प्रथम अष्टक के प्रथम अध्याय के न्यूनाक्षरता के कारण छन्दोभङ्ग से खण्डित पादों का शुद्ध पाठ निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिये -

१ **रीळियो** नूतनैरुत। ऋ० १.१.२.२
२ यदङ्ग दाशुषे **तुव**। ६.१
३ वर्धमानं **सुवे** दमे। ८.३
४ **सूनवे, अग्ने** सूपायनो भव। ९.२
५ सचस्वा नः **सुवस्तये**।। ९.३।।
६ वायवा याहि **दर्शत, इमे** सोमा अरङ्कृताः। २.१.१-२
७ जरन्ते, **तुवा**मच्छा जरितारः। २.२
८ **मक्षुवित्था** धिया नरा।। ६.३।।
९ **धिष्णिया** वनतं गिरः।। ३.२.३
१० सुता इमे **तुवायवः** ३.४.२।।
११ यो **रायो अव**निर्महान्। ४.१०.१।।
१२-१३ आ **तु एता** निषीदत, **इन्द्र**मभि प्र गायत। ५.१.१-२
१४ ईशानं **वारियाणाम्**। ५.२.२
१५ स राये स **पुरन्धियाम्**। ५.३.२
१६ सोमासो **दधियाशिरः**।। ५.५.३
१७ आ त्वा **विशन्तुवाशवः**। ५.७.१
१८-१९ **तुवां** स्तोमा अवीवृधन्, **तुवा**मुक्था शतक्रतो।
२० **तुवां** वर्धन्तु नो गिरः।। ५.८.१-३
२१ यस्मिन् विश्वानि **पौंसिया**।। ५.९.३।।
२२-२३ युञ्जन्तियस्य **कामिया**। ६.२.१
२४ गणैरिन्द्रस्य **कामियैः**।। ६.८.३।।
२५ इन्द्र इद्ध**रियोः** सचा। ७.२.१
२६ इन्द्र वाजेषु **नो अव**। ७.४.१

२७	कृष्टीरियर्तियोजसा। ७.८.२
२८	हवामहे जनेभियः। ७.१०.२।।
२९	**आ इन्द्र** सानसिं रयिम। ८.१.१
३०	**तुवो**तासो **नियर्**वता।। ८.२.३
३१	**दियौ**र्न प्रथिना शवः।। ८.५.३
३२–३४	एवा **हियस्य कामिया**, स्तोम उक्थं च **शंसिया**।। ९.१–२।।
३५	इन्द्रेहि म**त्सियन्**धसो[1]। ९.१.१
३६	सचैषु सवनेषु**वा**।। ९.३.३
३७	राध इन्द्र **वरेणियम्**।[2] ९.५.२
३८	अस्मानत्सु तत्र चोदय, **इन्द्र** राये रभस्वतः। ९.६.१–२
३९	विश्वायुर्धे**हियक्षि**तम्।। ९.७.३
४०	सुते–सुते **नियो**कसे। ९.१०.१।।
४१–४२	गायन्ति त्वा गायत्रि**णो, अर्चन्तिय**र्कमर्किणः। १०.१.२
४३–४४	**भूरियस्**पष्ट **कर्तुवम्**। १०.२.२
४५	वृषणा क**क्षियप्**रा। १०.३.२
४६–४७	एहि स्तोमां अभि स्व**र, अभि** गृणी**हिया** रुव।
४८	ब्रह्म च नो वसो **सचा, इन्द्र** यज्ञं च वर्धय।। १०.४
४९	उक्थमिन्द्राय **शंसियं**। १०.५.१
५०	रारणत् **सखियेषु** च।। १०.५.४
५१	तं राये तं सु**वीरियें**। १०.६.२
५२	जेषः **सुव**र्वतीरपः। १०.८.३।।
५३	**तुवा**मभि प्र णोनुमो। ११.२.३
५४	न वि दस्यन्ति**यूतयः**। ११.३.२

१ इस पाठ में यह पाद जविपुला गायत्री का है। 'इन्द्र एहि मत्सोस्यन्ध' व्यवाय से पादपूर्ति करने पर पाद तविपुला गायत्री का होगा। यथा–पाठ में यह निचृद् है। ऋषि को प्रिय लय की दृष्टि से जविपुल अष्टाक्षर वृत्त अधिक आर्ष लगता है।

२ ऋग्वेदसंहिता में 'वरेण्य' शब्द के सभी प्रयोगस्थानों में छन्दोभङ्ग उपलब्ध होता है।

५५–५६ **तुवं** व॒लस्य॒ गोम॑**तो॒, अ**पा॑वरद्रिवो॒ बिल॑म्। ११.५.२

५७ **तुवं** शुष्ण॒मवा॑तिरः। ११.७.२

५८ तेषा॒ं श्रवां॑**सि॒यु**त्ति॑र।। १०.७.४

५९ इन्द्र॒मीशा॑न॒मो**जंसा, अ॒भि** स्तोमा॑ अनूषत। ११.८.१–२

६० असि॒ होता॑ न॒ **ईळि॑यः**।। १२.३.४

६१ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒**तियम्।** १२.४.२

६२ अग्ने॑ **तुवं** र॑क्ष॒स्विन॑ः। १२.५.४

६३ ह॒व्य॒वाड् जु॒हु**वां॑सि**यः।। १२.६.३

६४ स न॑ः पावक दीदि**वो॒, अग्ने॑** दे॒वाँ इ॒हा व॑ह। १२.१०.१–२।।

६५ नक्तो॒षासा॑ सु॒पेश॑**सा, अ॒**स्मिन् य॒ज्ञ उप॑ ह्वये। १३.७.१–२

६६ होता॑रा॒ **दैवि॑या** क॒वी। १३.८.२

६७ ब॒र्हिः सीं॑**दन्तुव॒**स्रिधः॑।। १३.९.३

६८ स्वाहा॑ य॒ज्ञं कृ॑णो**तन॒, इन्द्रा॑**य॒ यज्व॑नो गृ॒हे॒। १३.१२.१–२।।

६९ तान् यज॑त्राँ ऋता॒वृ**धो॒, अग्ने॒** पत्नी॑वतस्कृधि। १४.७.२

७० ये यज॑त्रा॒ य **ईळि॑यास्**। १४.८.१

७०–७२ विश्वे॑भिः **सोमि॒यं** मध**ु, अग्न॒** इन्द्रे॑ण वा॒युना॑। १४.१०.१–२

७३–७४ **तुवं** होता॒ मनु॑**र्हितो॒, अग्ने॑** य॒ज्ञेषु॑ सीदसि। १४.११.१–२

७५ युक्ष्वा **हि अरु॑षी॒** रथे॑। १४.१२.१।।

७६–७७ इन्द्र॒ सोम॒ं पिब॑ ऋ॒तु**ना॒, आ** त्वा॑ विश**न्तुवि**न्द॑वः। १५.१.१–२

७८ **तुवं** हि र॑त्न॒धा असि॑।। १५.३.३

७९ **दीदि**यग्नी शुचिव्रता। १५.११.२

८० गार्ह॑पत्येन **सन्तिय**। १५.१२.१

८१ इन्द्र॑ प्रय॒**तिय॑**ध्व॒रे। १६.३.१

८२ सेमं न॒ः स्तोम॒मा ग॑**हि॒, उपे॒**दं स॑वनं सु॒तम्। १६.५.१–२

८३–८४ स्तवा॑म त्वा **सुवा॒धियः॑**।। १६.९.३।।

८५ गन्ता॑रा॒ हि **स्थो अव॑**से। १७.२.१

८६ भूयामं वाजंदा**व**नाम्।। १७.४.३

८७-८९ इन्द्रंः सहस्र**दावंनां,** वरुंणः शं**सिंयाना**म्।क्रतुंर्भवति**युक्थि**यंः।।१७.५

९० सिषांसन्तीषु धीषु**वा**। १७.८.२

९१ सोमानं **सुवरंणं**। १८.१.१

९२ धूर्तिः प्र णङ् **मर्तियस्य**। १८.३.२

९३ सोमों हिनोति **मर्तियम्**।। १८.४.३

९४-९५ **तुवं** तं बंह्मणस्पते, सोम इन्द्रंश्च **मर्तियम्**।

९६ दक्षिंणा **पातुवं**हंसः।। १८.५

९७ प्रियमिन्द्रंस्य **कामिंयम्**। १८.६.२

९८ प्राञ्चं कृणोति**यध्वरम्**। १८.८.२।।

९९ नहि देवो न **मर्तियो**। १९.२.१

१०० सृजामिं सो**मियं** मधुं। १९.९.२।।

१०१ तुवामच्छां चरामसि।। ९.२.५.१

१०२ इन्द्रो तुवे नं आशसं।। ९.१.५.३

१०३ स्वसांरः पारिंये दिवि।। ९.१.७.३

१०४ तमीं हिनुवन्त्यग्रुवो।। ९.१.८.१ अथवा

तमीं हिन्वन्तियग्रुवो।।

१०५ अभी३ममघ्निंया उत।। ९.१.९.२

१०६ अस्येदिन्द्रो मदेंषुवा।। ९.१.१०.१

।। ॐ तत् सत्।।